CC BY

The Conspiracy Of The Market: Unraveling The Crisis In Television Journalism

बाज़ार का षडयंत्रा और टेलीविज़न पत्राकारिता का संकट

– डॉ. मीना शर्मा

संचार माध्यमों में दूरदर्शन की अहम भूमिका रही हैं जिसमें माननवीय संवेदनाएं एकदम संसार के एक कोने से दूसरे कोने में प्रकट होती हैं और भावनाओं के सागर को उकेरने का काम दूरदर्शन करता है। जनसंचार में दूरदर्शन का योगदान क्या है और उसका स्वास्थ्य कैसा है? संसार में इसकी सार्थकता क्या है? ये कैसे लोगां में संस्कार डाल रहा है? आज क्या प्रस्तुत कर रहा है? ये और ऐसे कई विचारणीय मुद्दे आज के समय में बार–बार हमारे सामने उठ रहे हैं।

इन सभी मद्दों से पहले यह जानना भी जरूरी है कि क्या दूरदर्शन के बिना आम आदमी रह पाएगा? इसकी अभिव्यक्ति के बिना उसे सब सूना–सूना ही लगेगा। यह एक विरोधभासी स्थिति है कि दूरदर्शन लोगों के बीच की दूरी कम भी करता है और बढाता भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जनसंचार के अनेक माध्यमों में टेलीविज़न की भूमिका सर्वोपरि है।

वर्तमान में दूरदर्शन का वास्तविक स्वरूप समाज को घेराबन्दी कर रहा है। आज वह हमारे सामाजिक ताने–बाने पर इतना गहरा प्रहार कर रहा है कि सामाजिक रिश्तों की गरिमा भी दूरदर्शन के इर्द–गिर्द मंडराने लगी हैं। यह भी सच है कि दूरदर्शन आज एक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है। आज इसने हर वर्ग के बच्चों, बूढ़ों, स्त्राी, पुरूष, सवर्ण, दलित सभी को अपने जाल में ऐसा पँफसा लिया है कि इससे निकल पाना असम्भव–सा लगता है। यदि हम शहरों की बात करें तो दूसरे दिनों की अपेक्षा शनिवार और रविवार को लोग दूरदर्शन के कार्यक्रम देखना ज्यादा पसन्द करते हैं। जिससे एक तरपफ दूरदर्शन से सम्पर्क बढ़ता है मगर दूसरी और सामाजिक रूप से वह जनसम्पर्क करता है। आज टेलीविज़न केवल दूदर्शन नहीं रहा उसमें निज़ी चैनलों के आगमन के कारण उसकी भरमार हो गई है। टेलीविज़न के बटन दबाते ही हमारे सामने चैनलों की एक छोटी सी दुनिया सामने आ जाती है। उस दुनिया को संचालित करने के लिए रिमोट की व्यवस्था ने हमारे सामने अनेक कार्यक्रमों की कतार लगा दी है। व्यक्ति अपनी पसन्द और नापसन्द के कार्यक्रमों का चयन करने के लिए स्वतंत्रा है। अब उसकी यह बाध्यता नहीं है कि दूरदर्शन पर दिखाने वाले कार्यक्रमों के हर कार्यक्रम को उसे देखना ही होगा।

मानव मन हमेशा से चंचल रहा है और उसको तरह–तरह के व्यंग्य–विनोद–प्रमोद के मौके चाहिए और ये मौके उसे टेलीविज़न पर आज के समय पर भरपूर रूप से मिल रही है। चाहे वह खेल जगत हो, क्विज़, समाचार, गानें या पिफल्में हों या पिफर रियेलिटी शो, इतिहास और प्रकृति का विशाल साम्राज्य, अब टेलीविज़न पर इंसान से कुछ भी दूर नहीं रहा। इस निरक्षर बहुल भारत देश में बाज़ार के विस्तार ने इन निरक्षरों को भी दुनिया के मायने बता दिए हैं। अभी तक निरक्षर लोगों की दुनिया उनके आस पास तक ही सीमित थी लेकिन नई तकनीक ने उन्हें इस दुनिया से बाहर निकालकर वास्तविक दुनिया से परिचित कराया है। अभी तक वह रेडियो से निकलती आवाज़ों के बीच ज़िन्दगी को महसूस करता था लेकिन अब शब्दों के पीछे के अदृश्य संसार को टेलीविज़न ने उसके लिए साक्षात् कर दिया है।

बाज़ार की बदलती तस्वीर ने टेलीविज़न को वास्तविकता और कल्पना की मिली जुली दुनिया के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इसका कल्पनालोक भी किसी वास्तविक संसार से परे नहीं हैं। बाज़ार के दबाव के कारण नई–नई तकनीकी योग्यता से भरपूर टेलीविज़न अब जनता के लिए उसकी रूचि और आवश्यकता को दृष्टिगत रखकर कार्यक्रमों का निर्माण कर रहा है। लेकिन टेलीविज़न की इस दुनिया ने बाज़ार के चलते संवेदनाओं पर भी अपना आधित्य जमा लिया है। अब उसके लिए आम आदमी की संवेदनायें टारगेट बन गई हैं जिन्हें दृष्टिगत रखकर ही वह नए कार्यक्रमों की भृमिका तैयार करता है। लेकिन ऐसे कार्यक्रमों को बाज़ार को आधर बनाकर तैयार करने के कारण ही अब लोगों के सम्बन्धें में भी विभाजन की रेखा खिंचने लगी है। कार्यक्रम की अजब–गजब दुनिया ने बच्चों और अभिभावकों के बीच भी दूरी बढ़ा दी है।

एक समय था जब टेलीविज़न समाज में संस्कारों को पोषित और विकसित करने का सबसे बड़ा माध्यम था। जिस समाज में बच्चे दादा–दादी, नाना–नानी और अपनी बढ़े बुजुर्गों की गोद में बैठकर ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं को सुनकर संस्कारों को प्राप्त करते थे और उसी दौर में ही दूरदर्शन ने उन संस्कारों को टेलीज़िन के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया। अपनी आचार संहित के दायरे में और सरकारी नियंत्राण में होने के कारण दरदर्शन द्वारा विभिÂ प्रकार के शैक्षिक और सामाजिक कार्यक्रमों के निर्माण समाज को दिशा देने में सहायक होते थे। लेकिन आज की भाग–दौड़ भरी ज़िन्दगी में जहाँ किसी के पास एक–दो पल की भी पुफरसत नहीं है, ऐसे में माता–पिता, दादा–दादी से उन कहानियों को सुनने–सुनाने का अवसर ही कहाँ रह गया। ऐसे में टेलीविज़न के पास ढेरों कार्यक्रमों का अंबार लग गए हैं। भले ही इनमें रामायण, श्रीगणेश, मीराबाई, आदि जैसे पौराणिक और ऐतिहासिक कार्यक्रमों की भी लम्बी सूची हो लेकिन अध्किांश ऐसे कार्यक्रम का भी निर्माण टेलीविज़न के लिए किया जा रहा है जो अश्लील और पतनशील संस्कृति के साक्षी हैं। बच्चों पर इन कार्यक्रमों द्वारा परोसी जा रही अपसंस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ता है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार यह सापफ–सापफ कहा गया कि आज समाज मे जितनी भी मानसिक विकृतियाँ पैदा हुई हैं उनका एकमात्रा कारण टेलीविज़न पर प्रसारित होने वाले विभिÂ कार्यक्रम हैं। टेलीविज़न सम्बन्धें में मीडिया विशेषज्ञ भारत डोगरा की यह बात प्रभावशाली है कि टेलीविज़न पर विस्तारपूर्वक अपराध् दिखाना ज्यादा खतरनाक है।

इसमें कापफी तपफ़सील से बताया जाता है कि कैसे रोजमर्रा की चीजों का घातक हथियारों के रूप में उपभोग किया जा सकता है। जासूसी सीरियल के नाम पर दिखाए जाने वाली कहानियाँ आने वाली पीढ़ी को अलग तरह के माहौल में भेज रही हैं। ज्यादा गम्भीर समस्या यह है कि ज्यादा व्यापक स्तर पर रोजमर्रा की ज़िन्दगी में एक आक्रामक रवैया घर करता जा रहा है। कई बच्चों का आक्रामक रवैया दरअसल उस ऊर्जा का विस्पफोट बन जाता है।

वास्तविकता यह है कि बच्चों के लिए वास्तविकता और कल्पना में अन्तर करना मुश्किल हो जाता है। बच्चों में अत्यध्कि जिज्ञासा होती है। सर्वसुलभ बुि(होने के कारण बच्चे बहुत जल्दी कुछ सीख जाते हैं। टेलीविज़न द्वारा उनके सामने हिंसा, श्लील दृश्य और सेक्स, लिव इन रिलेशनशिप का एक नया अध्याय प्रस्तुत किया जा रहा है। जो हमारे वर्तमान और भविष्य को नैतिकता के स्थान पर चारित्रिक पतन की ओर ध्केल रहा ह। टेलीविज़न के सामने बैठा कच्ची मानसिकता का बालक नायक के जीवन को आम जीवन की वास्तविकता समझता है और उसे अपना आदर्श मानकर वह उसका अनुसरण करने लगता है या करने की चेष्टा करता है। वह नायक की उस छवि को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करता है जो वास्तविक जीवन से परे की चीज़ है। उसे समझ नहीं पाता और धीरे–धीरे उसका मानसिक, चारित्रिक और बौि(क पतन होने लगता है। सेक्स जैसी चीज़ों को खुलेआम टलीविज़न पर इस तरह प्रस्तुत किया जाता है जैसे हर बच्चों और बड़े–बूढ़ों में एक नैतिक विचार डालने का प्रयास किया जा रहा हो।

सामाजिक परिवेश, नैतिक मूल्यों, संस्कारों, बौ(िक विकास के लिए टेलीविज़न की सकारात्मक भूमिका आज नकारात्मक बनती चली जा रही है और इन सबका सबसे बड़ा कारण टेलीविज़न पर हावी होने वाला बाज़ार है। बाज़ारवाद के चलते ही उसने अपनी सारी मर्यादा समाप्त कर दी है। उसके लिए जिस चीज़ को परोसने से दर्शक में हनचचल पैदा हो उसे परोसने में उसे संकोच नहीं है। अनावश्यक रूप से टेलीविज़न पर अश्लीलता के प्रदर्शन से वह बाज़ नहीं आता। हर परत–दर–परत उसे उकेरने में लगा रहता है। वह जानता है कि समाज में लोग इसे देखेंगे और ऐसा कार्यक्रम चैनल की टी. आर.पी. के साथ–साथ बाज़ार को भी पुख्ता करेगा।

एक समय था जब टेलीविज़न समाज में वरदान की तरह आया और समाज को ज्ञान और विज्ञान की कितनी ही तरह की जानकारियाँ देता था लेकिन वहीं आज अश्लील और भद्दे मज़ाकों से युक्त कार्यक्रमों के कारण वह सामाजिक अभिशाप बन गया है। दरअसल टेलीविज़न दर्शकों के बीच तादात्म्य स्थपित करने का महत्वपूर्ण जरिया है। यदि उसका रचनात्मक एवं सार्थक ढंग से इस्तेमाल किया जाए जो भारत जैसे विकासशील देश में शीघ्र ही सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हो सकते हैं तथा वह देश प्रगति और की पथ की ओर बढ़ सकता है। किन्तु देश में पैफली गरीबी, जात–पात की दीवारें, ध्र्मान्धकता, साम्प्रदायिकता, अशिक्षा, बेरोजगारी और अज्ञानता जैसी स्थितियों के चलते ही टेलीविज़न जनमानस को निकम्मा, नकारा, चरित्राहीन और अराजक बनाने के लिए बाज़ार के हाथों बिक चुका है। वह जागृति और विकासोन्मुख कार्यक्रमों के स्थान पर घटिया स्तर के अश्लील कार्यक्रमों को समाज में परोस रहा है जिससे देश की युवापीढ़ी गुमराह हो रही है। उनका नैतिक पतन हो रहा है। अश्लील, भौंडे और विलासितापूर्ण विज्ञापनों, कार्यक्रमों से दर्शकों की रूचि का विकृत किया जा रहा है।

नारी देह को एक वस्तु के रूप में परोसा जा रहा है। जहाँ नारी सशक्तिकरण की बात की जा रही है वहीं नारी को उपभोग की वस्तु के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। टेलविज़न पत्राकारिता का वास्तविक संकट यही है जो हमारे जीवन में जड़ पकड़ रहा है। इससे दूर रहना और बचना भले ही असम्भव–सा लगता हो लेकिन यदि देश की आम–जनता इसके मोहपाश से मुक्त हो एकीकृत होकर इसका विरोध् करे तो निश्चित रूपसे बाज़ार का यह षडयंत्रा भी ध्राशायी हो जाएगा और टलीविज़न पत्राकारिता अपने आदर्श रूप में पिफर से लौट आएगी।